इकाई 18 संस्थागत वित्त, संविदा कृषि और खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

संरचना

18.0 उद्देश्य

18.1 प्रस्तावना

18.2 संस्थागत वित्त (IF)

18.2.1 कृषि वित्त से संबद्ध जोखिम

18.2.2 कृषि ऋण देने वाली संस्थानों का निष्पादन

18.2.3 अन्य पहलें और समस्याएँ

18.2.4 महत्त्वपूर्ण मुद्दे और राज्य की भूमिका

18.3 संविदा कृषि (CF)

18.3.1 संविदा कृषि : अवधारणा और प्रकार

18.3.2 संविदा कृषि की सीमाएँ : इसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ

18.4 खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

18.4.1 शीत श्रृंखला

18.4.2 मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला

18.5 सारांश

18.6 शब्दावली

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

18.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप :

- कृषि के लिए संस्थागत वित्त के भिन्न-भिन्न स्रोत बता सकेंगे;
- कृषि ऋण देने से संबद्ध विशिष्ट जोखिमों को स्पष्ट कर सकेंगे;
- पिछले चार दशकों में कृषि को ऋण देने के प्रयोजन से विशेष रूप से स्थापित प्रमुख संस्थाओं के कार्यों के निष्पादन का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारत में कृषि ऋण/विकास पर अन्य संस्थागत पहलुओं और महत्त्व के मुद्दों की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकेंगे;
- ''संविदा कृषि'' की अवधारणा और प्रकार पर चर्चा कर सकेंगे;
- भारत में ''संविदा कृषि'' के कार्य-निष्पादन का मूल्यांकन कर सकेंगे और इससे उसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाओं की पहचान कर सकेंगे; और

- ''खाद्य श्रृंखला की अवधारणा'' की ''शीतागार श्रृंखला'', ''मूल्य श्रृंखला'', और ''आपूर्ति श्रृंखला'' जैसी आवश्यकताओं से जोड़ते हुए परिभाषा कर सकेंगे।

18.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने अध्ययन किया है कि सहकारी समितियों का संवर्धन कृषि सेक्टर की ऋण आवश्यकताओं को पूरा करने में सहायता के लिए किया गया था ताकि सूदखोर साहूकारों द्वारा शोषण से गरीब किसानों को मुक्त किया जा सके। हमने यह भी देखा है कि यद्यपि सहकारी समितियों की भूमिका का विस्तार बाद में बहुत से अन्य क्षेत्रों में भी किया गया है परंतु उनकी मुख्य भूमिका किसानों की ऋण आवश्यकताएँ पूरी करना ही रहा। हमने यह भी देखा है कि 1969 में वाणिज्यिक बैंकों के राष्ट्रीयकरण के मुख्य उद्देश्यों में से एक अब तक उपेक्षित सेक्टरों, जैसे कृषि के लिए अधिक बैंक ऋण देना था। इस इकाई में, पहले हम उन मुख्य बातों पर विचार करेंगे जो कृषि सेक्टर को ऋण सेवाएं देने के अधिक जोखिम भरा बना देती हैं। फिर हम 1980-2010 की तीन दशाब्दियों के दौरान कृषि को संस्थागत वित्त प्रदान करने की दिशा में किए गए प्रयासों का विश्लेषण करेंगे। हम कुछ अन्य संस्थागत पहलों, जैसे लघु वित्तीयन संस्थाओं (MFI) के बारे में और भारत में संस्थागत वित्त से संबंधित समस्या के मुद्दों पर भी अध्ययन करेंगे। इसके बाद हम कृषि में एक अलग संस्थागत विकास अर्थात ''संविदा कृषि'' पर विचार करेंगे। 1990 के दशक में विकसित यह परिदृश्य अन्य पहलुओं, जैसे उत्पादों के विपणन और नियत प्रतिलाभ पर किसानों की सहायता करने के अलावा कृषि ऋण को आसान करने के उपाय का भाग था। हम खासतौर पर ''संविदा कृषि'' के प्रकारों/प्रक्रिया के निष्पादन पर उसके इस सफल रूप से कार्य करने के लिए आवश्यक दशाओं की पहचान करते हुए ध्यान केंद्रित करेंगे। पर्यावरण और समानता के समुचित सम्मान के साथ सुव्यवस्थित खाद्य श्रृंखला बनाए रखने का महत्त्व, हाल ही की दशाब्दियों में नीति निर्माण और अनुसंधान का केंद्र रहा है। इस संदर्भ में हम ''खाद्य श्रृंखला'' अवधारणा का, उसके भंडारण, परिवहन, सूचना प्रसारण, मूल्य वर्धन, मूल्य नियंत्रण आदि संस्थागत पहलुओं पर संबद्ध तत्वों के साथ अध्ययन करेंगे।

18.2 संस्थागत वित्त (IF)

कृषि के संदर्भ में संस्थागत वित्त (देखिए शब्दावली) का संबंध कृषि की ऋण आवश्यकता पूरी करने के लिए सार्वजनिक एजेंसियों, जैसे, सहकारी समितियों या बैंकों, क्षेत्रीय और ग्रामीण बैंकों (RRB) और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों द्वारा दिए गए ऋण से है। विनियमित ब्याज दरें लेने के अलावा विनियमित संस्थाएँ होने के कारण ''सामाजिक बैंकिंग'' के वृहत्तर राष्ट्रीय उद्देश्य के अधीन प्रायः वे प्राथमिकता सेक्टरों जैसे कृषि से ब्याज की रियायती दरें प्राप्त करते हैं। शब्द ''सामाजिक बैंकिंग'' उन अनौपचारिक उद्यमों और किसान वर्गों (अर्थात् गरीब और सीमांत किसानों का बहुत बड़ा भाग) की ऋण आवश्यकताएँ पूरी कर ''खाद्य सुरक्षा'' सहित छोटे उद्यमों और कृषि संवर्धन की सामाजिक अनिवार्यताओं के लिए बहुत महत्त्व रखता है जिनकी मुख्यधारा बैंकिंग प्रणाली द्वारा उपेक्षित रही है। वित्तीय संस्थाओं को उन विशेष किस्म के जोखिमों का सामना करना पड़ता

है जो मुख्यतया कृषि सेक्टर के विशेष स्वरूप और लक्षणों के कारण उत्पन्न होती है।

18.2.1 कृषि वित्त से संबद्ध जोखिम

कृषि ऋण में खास किस्म के जोखिम हैं। ये निम्नलिखित उत्पन्न होते हैं :

i) राजनीतिक दृष्टि से इसका संवेदनशील स्वरूप, जिसके कारण बहुधा ग्रामीण वित्त बाजार (ऋण माफी) में सरकार का हस्तक्षेप होता है।

ii) अपूर्वानुमेय कारकों पर आश्रित मौसमी कार्य जिनके कारण किसानों का उत्पादन की स्थिति पर कोई नियंत्रण नहीं होता है, परिणामतः उपज में अनिश्चितता उत्पन्न होती है।

iii) बहुत ही विषमताग्रस्त किसान परिवारों के बारे में कम जानकारी उपलब्ध होने के कारण ऋणदाताओं और ऋण प्राप्तकर्त्ता दोनों का उच्च लेन-देन व्यय। यह ऋणदाता द्वारा दिए गए ऋण का पर्यवेक्षण खर्चीला/जोखिमी बनाता है। ऋण लेने वालों के लिए अधिक अवसर लागत भी है, जिसमें लेन-देन व्यय शामिल है, जैसे परिवहन ऋण, फीस और रिश्वत आदि, जो गरीब किसान पर खासतौर पर भारी बोझ सिद्ध होता है।

iv) किसानों की बहुत बड़ी संख्या बहुत मामलों में कम भौतिक परिसंपत्ति के स्वामित्व कारण अपेक्षित ऋण की जमानत प्रस्तुत नहीं कर पाते हैं। परिसंपत्तियों का कानूनी स्वामित्व दिखाने में कठिनाई का सामना करते हैं वहाँ भी वे उन जहाँ उनके पास कुछ परिसंपत्ति होती है;

v) गरीब किसानों की एकीकृत उत्पादन/उपभोग आवश्यकताएँ उन्हें उत्पादन हेतु लिए ऋण का उपभोग और सामाजिक आवश्यकताओं में व्यय करने को विवश कर देती है।

उपर्युक्त कारकों/ कारणों से कृषि ऋण से संबद्ध जोखिम का अन्य वाणिज्यिक ऋण को जोखिम से भेद स्पष्ट हो सकते हैं।

18.2.2 कृषि ऋण देने वाली संस्थानों का निष्पादन

संस्थागत वित्त के निष्पादन का निर्धारण करने की प्रत्यक्ष विधि तीन प्रमुख संस्थाओं, अर्थात् सहकारी समितियों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों (RRB) और अनुसूचित वाणिज्यिक बैंकों (SCB) द्वारा कृषि को दिए गए ऋण के वितरण का अध्ययन करना है। यह हमें समय के चलते दिए गए ऋण के सापेक्ष अंश में परिवर्तन के बारे में भी बता सकता है। इन संस्थाओं के कार्य निष्पादन में वृद्धि देखना भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह उनके कुल कार्य निष्पादन के आकलन के लिए भी आवश्यक है। तालिका 18.1 में तीन दशकों की अवधि में कृषि को तीन प्रमुख प्रकार की संस्थाओं द्वारा दिए गए ऋण में प्रवृत्ति दर्शाती है। प्रवृत्ति से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

- सहकारी समिति का सापेक्ष अंश घटा है। यह 1980-81 में लगभग 57 प्रतिशत से घटकर 2008-09 में 18 प्रतिशत हुआ है। वाणिज्यिक बैकों के

अंश में तदनुरूपी वृद्धि हुई है। यह इस अवधि के दौरान 40 प्रतिशत से बढ़कर 72 प्रतिशत हुई है।

- RRB जो 1971-72 में प्रारंभ किए गए थे, वे अधिक स्थिर स्थिति में है। कृषि को कुल संस्थागत ऋण में RRB का शेयर 1980-81 में लगभग 2.4 प्रतिशत से बढ़कर 2008-09 में 10.5 प्रतिशत हुआ है।
- 1981 और 2009 के बीच वृद्धि दर के अनुसार SCB ने 16.5 प्रतिशत की चक्रवृद्धि वार्षिक वृद्धि दर (CAGR) दर्ज की है। RRB ने तदनुरूपी अवधि के दौरान 20.2 प्रतिशत की वृद्धि से बेहतर निष्पादन किया है। सहकारी बैकों का निष्पादन इस अवधि के दौरान 9.7 प्रतिशत के CAGR से कम रहा है।
- उप अवधियों के दौरान निष्पादन में विभिन्नता की मात्रा हो सकती है। इसे मानते हुए 1981-2009 की अधिक लंबी अवधि के दौरान तीन प्रकार के संस्थाओं में से प्रत्येक का कुल निष्पादन पर विचार करते हुए अंतर संस्थागत विभिन्नताएँ RRB और वाणिज्यिक बैंकों की कृषि को ऋण का बढ़ता हुआ महत्त्व दर्शाता है।

तालिका 18.1 : कृषि को संस्थागत ऋण का स्रोतवार वितरण

(प्रतिशत)

वर्ष	**सहकारी बैंक**	**क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक (RRB)**	**अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक (SCB)**	**जोड़**
1980-81	57.2	2.4	40.4	100(7538)
1990-91	35.9	6.0	58.1	100(29316)
2000-01	50.3	7.9	41.8	100(91654)
2008-09	17.9	10.5	71.6	100 (357531)
वृद्धि दर 1981-2000(%)	9.7	20.2	16.5	14.2

नोट : अंतिम कॉलम में कोष्ठकों के अंदर आँकड़े करोड़ रुपयों में दिया गया ऋण है।

स्रोत : RBI/NABARD

तालिका 18.2 : संस्थागत/असंस्थागत स्रोतों से किसान परिवारों द्वारा कर्ज लेने का सापेक्ष अंश (%)

ऋण का स्रोत	**1951–52**	**1961–62**	**1971–72**	**1982**	**1992**	**2003**
असंस्थागत	92.7	81.3	68.3	36.8	30.6	38.9
संस्थागत	7.3	18.7	31.7	63.2	66.3	61.1
कुल	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**	**100**

स्रोत : RBI 1951-52 और 1961-62 और बाद के वर्षों के लिए NSSO, अखिल भारतीय ऋण और निवेश सर्वेक्षण।

- सभी तीन प्रकार की संस्थाओं से 1981-2009 की अवधि के दौरान CAGR के अनुसार कुल निष्पादन 14.2 प्रतिशत है जो कृषि को ऋण के परिमात्रात्मक निष्पादन के अनुसार प्रशंसनीय है (यद्यपि यह सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य 18 प्रतिशत से कम है)।

इस संदर्भ में यह देखना कि क्या गैर संस्थागत स्रोतों से लिये गए कृषि ऋण के भार में गिरावट हुई है महत्त्वपूर्ण है। इस संबंध में तालिका 18.2 में प्रस्तुत आंकड़े दर्शाते हैं कि कृषि को संस्थागत वित्त की सीमा में निरंतर वृद्धि हुई है। 1951-52 में 7.3 प्रतिशत के निम्न अंश से उठकर 2003 में यह 61.1 प्रतिशत हो गया है (यद्यपि यह 1992 में पहुंचे शीर्ष 66.3 प्रतिशत से कम था)। इस ह्रास का मुख्य कारण 1991 के बाद के वर्षों के दौरान लागू किए गए वित्तीय सेक्टर सुधारों द्वारा संस्थागत ऋण की गति में रुकावट थी। RBI द्वारा वृहत्तर सामाजिक एवं पुनर्वितरणात्मक उद्देश्यों से ऋण प्रणाली की समीक्षा करने के लिए नियुक्त समिति (नरसिम्हन समिति) ने कृषि और लघु उद्योग को प्राथमिकता सेक्टर वरीयता समाप्त करने की सिफारिश की। यद्यपि सरकार ने पूरी तरह से उसकी सिफारिशें नहीं स्वीकार कीं परंतु लगभग एक दशक के अंत तक ग्रामीण बैंकों की शाखाओं के विस्तार को धक्का लगा। इसके फलस्वरूप कृषि को ऋण देने के कार्यों को भी धक्का लगा और अनौपचारिक ऋण पर किसानों की निर्भरता बढ़ी। परंतु बाद के वर्षों में गंभीर कृषि संकट ने सरकार को 1990 के दशक के दौरान लगाए गए प्रतिबंधों में ढील देने के लिए बाध्य किया और 2003-04 में कृषि को बैंक ऋण दुगुना करने की नीति लागू की गई। इससे कृषि ऋण के वितरण में सुधार हुआ जैसा कि समग्र संस्थागत वित्त की वृद्धि निष्पादन से देखा गया है। (1981-2009 के दौरान 14.2 प्रतिशत)।

18.2.3 अन्य पहलें और समस्याएँ

बैंकों के राष्ट्रीयकरण के बाद के वर्षों में महत्त्वपूर्ण नीतिगत पहलों में एक ''प्राथमिकता सेक्टर'' के लिए 40 प्रतिशत बैंक ऋण निर्धारित करने से संबंधित है। प्राथमिकता सेक्टर में कुछ उच्चतम सीमा के साथ कृषि, लघु उद्योग, माइक्रो क्रेडिट, शिक्षा ऋण और आवास ऋण शामिल है। प्राथमिक सेक्टर के लिए निर्धारित 40 प्रतिशत में कृषि का अंश 18 प्रतिशत है। प्राथमिकता सेक्टर ऋण के अधीन कृषि सेक्टर को ऋण में भिन्न-भिन्न कृषि कार्यों के लिए स्वीकृत ऋण भी शामिल हैं और छोटे तथा सीमांत किसानों के मामले में इसमें भूमि खरीदने के लिए ऋण शामिल हैं। 1990 के दशक के मध्य से कृषि को 18 प्रतिशत प्राथमिकता सेक्टर ऋण का लक्ष्य पूरा करने में धक्का लगा है। उदाहरण के लिए, 1996-97 में बैंक ऋण में कृषि का अंश घटकर 12.4 प्रतिशत हुआ और आगे 2002-03 में घटकर 11.0 प्रतिशत हुआ (सिंह, 2012) यद्यपि यह आने वाले वर्षों में बढ़ा है परंतु, 18 प्रतिशत निर्धारित लक्ष्य तक कभी भी नहीं पहुंचा।

कृषि वर्ग की ऋण आवश्यकता की सुलभता आसान बनाने में संस्थागत स्वरूप की कुछ अन्य पहलें भी की गई हैं। उदाहरण के लिए, ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास निधि 1995 में स्थापित की गई। इस निधि के विशिष्ट उद्देश्यों में एक उन वाणिज्यिक बैंकों (अर्थात् SCB) को जो 18 प्रतिशत ऋण मार्क पूरा करने में असफल रहे थे, उस राशि का शेष भाग RIDF के पास जमा कराना था।

इस निधि का मुख्य उद्देश्य चल रही ग्रामीण आधारभूत संरचना परियोजनाओं को पूरा करने के लिए संसाधन पैदा करना था। एक अन्य पहल 1999 में किसान ऋण पत्र (KCC) का प्रचलन था। इस पहल के पीछे मुख्य उद्देश्य ऋण प्रणाली में निहित कठोरता दूर करना था और ऋण बाजार को परेशानी मुक्त और लागत प्रभावी तरीके में कार्य कर अधिक कर्जदार मैत्रीपूर्ण बनाना था। परंतु ऋण की सीमाएँ जोत के आकार, फसलक्रम और वित्त की मात्रा के आधार नियत की गईं। जो कारक वित्त की मात्रा निर्धारित करते थे, उनमें फसल उत्पादन के बहुत कार्यों जैसे कृषि मशीनरी का रखरखाव, विद्युत प्रभार आदि सहित पूर्व वर्ष की संपूर्ण ऋण आवश्यकताएँ शामिल होती थीं। KCC स्कीम सभी प्रमुख कृषि वित्त संस्थाओं जैसे SCB, सहकारी समितियों और RRB द्वारा क्रियान्वित हुई है। संस्थागत स्वरूप की एक अन्य पहल सभी तीन प्रमुख संस्थागत समूहों को पुनः शामिल करते हुए स्वावलंबन समूह – बैंक श्रृंखलन (SBL) कार्यक्रम का उद्देश्य युक्तिसंगत ढंग से कम समय में कम लागत पर ऋण प्राप्त कर SHG के सदस्यों को बचत संबद्ध ऋण सहायता प्रदान करना है। यह कार्यक्रम विशालतम ''माइक्रो वित्त'' पहल के रूप में विकसित हुआ है। SBL कार्यक्रम बैंकों को छोटे ऋण देने में अपनी संचालन लागत और जोखिम कम करने में समर्थ बनाता है। इस पहल ने गरीबों को सुलभता और ऋण प्रवाह में बहुत अधिक सुधार किया है। मुख्यतया महिलाओं का समूह होने के कारण इस कार्यक्रम ने गरीबों और साधनहीन व्यक्तियों का वित्तीय समावेशन प्रोत्साहित किया है। SBL की विशिष्ट विशेषता उसकी समय पर वसूली है। कृषि वित्त के संदर्भ में SBL की सदस्यता में किसान परिवारों से 80 प्रतिशत सदस्यता का होना बहुत महत्त्वपूर्ण है।

अपेक्षाकृत हाल ही की एक अन्य संस्थागत पहल माइक्रो वित्त संस्थाओं (MFI) का आविर्भाव है। यद्यपि अधिकांशतः SBL की भांति MFI बहुत पहलुओं में भिन्न है, जैसे– (i) वे सरकार के सांचे में काम नहीं करते हैं; (ii) वे सामाजिक स्तर पर संग्रहण नहीं करते, (iii) पूर्णतः लाभोन्मुखी संगठन हैं, जो ग्रामीण ऋण बाजार में संस्थागत शून्यता को विशुद्ध व्यापार अवसर आदि के रूप में देखते हैं। वे NGO (अर्थात् गैर-सरकारी संगठनों) के माध्यम से कार्य करते हैं जो स्वावलंबन समूह बनाते है जिनका उद्देश्य मात्र छोटे ऋणकर्त्ताओं को ऋण देना और समयबद्ध तरीके से उनसे वसूल करना है। वे जबरदस्ती वसूली प्रक्रिया अपनाने के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। MFI के कार्य उन स्थानों तक सीमित हैं जहाँ SBL कार्यक्रम सफल हैं। MFL ग्रामीण क्षेत्रों के बहुत अंदर तक फैले हुए है, विशेषकर जहाँ अपर्याप्त संस्थागत ऋण सुविधाएँ हैं। उनका कार्यकरण सामाजिक बैंकिंग की भावना के विपरीत है और बाद में उन्हें ''नए वेश में साहूकार'' नाम दिया गया है।

18.2.4 महत्त्वपूर्ण मुद्दे और राज्य की भूमिका

छोटे/सीमांत किसानों को ऋण के अंश में गिरावट

1981-2002 की अवधि के दौरान संपूर्ण प्रचालित (कृषि अधीन) क्षेत्र में सीमांत किसानों की संख्या बढ़ी है। परंतु उनके ऋण का अंश, उनके द्वारा प्रचालित क्षेत्र के अनुपात में ही बढ़ा है। यह (छोटे/सीमांत किसानों को वितरित बैंक ऋण अंश के 1982 में 1.02 से गिरकर 2003 में 0.41 होने के लिए उत्तरदायी

है। पांच एकड़ से अधिक के फार्मों का तदनुरूपी अनुपात 1.08 से बढ़कर 1.48 हुआ है। छोटे और सीमांत किसानों के ऋण के अंश में गिरावट पर तत्काल कदम उठाने आवश्यक है ताकि कुल वितरित ऋण में उनके अंश में सुधार हो।

क्षेत्रीय असमानताएँ

वितरित ऋण में बड़ी क्षेत्रीय असमानताएँ भी हैं। दक्षिणी क्षेत्र में वितरित कुल कृषि ऋण का लगभग एक-तिहाई वितरित हुआ है, यद्यपि वे देश के कुल किसान परिवारों का पाँचवें भाग से भी कम हैं। पाँच राज्यों अर्थात् आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, तमिलनाडु, कर्नाटक और महाराष्ट्र में बैंक ऋण का 50 प्रतिशत से अधिक वितरित हुआ है। इसके विपरीत ऋण में उत्तर-पूर्वी और पूर्वी क्षेत्रों को अंश काफी कम रहा है। उदाहरण के लिए, कृषि ऋण में बिहार का शेयर मात्र 2.4 प्रतिशत है जबकि किसान परिवारों की कुल संख्या में उसका शेयर 8 प्रतिशत है। आधे भारतीय राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों का ऋण में अंश एक प्रतिशत से भी कम है। भारत के राज्यों में कृषि का इस असमान प्रवाह का समंजन करना आवश्यक है। उत्तर-पूर्वी, पूर्वी और केंद्रीय प्रदेशों के जिलों के ऋण जमा (C-D) अनुपात दक्षिणी प्रदेशों की अपेक्षा निम्न देखे गए हैं।

राज्यों की भूमिका : कृषि की सुस्पष्ट विशेषताएँ, जो इसे सेक्टर की प्रभावशाली ढंग से सेवा करना वित्तीय संस्थाओं के लिए अधिक जोखिमी बनाता है उन पर सरकार की ओर से विशेष प्रयास करना आवश्यक है ताकि वित्त बाजार कृषि सेक्टर और ग्रामीण समुदाय की अधिक प्रभावी ढंग से सेवा कर सके। अधिक सुस्पष्ट रूप में राज्य की भूमिका में निम्नलिखित कार्य शामिल होने चाहिए।

- बुनियादी ग्रामीण आधारभूत संरचना का सुधार जैसे सड़कें, बिजली, संचार, विपणन, आधारभूत संरचना, सिंचाई आदि। इसे पहले दौर में वित्तीय आबंटन बढ़ाकर और दूसरे में स्वीकृत परियोजनाओं की निगरानी सुधार कर किया जा सकता है।
- ''सार्वजनिक उत्पादन'' जैसे सूचना, HRD के लिए सुविधाएँ और कृषि अनुसंधान की व्यवस्था में सहायता करना।
- समुचित वित्तीय प्रणाली स्थापित करना जो (i) प्रभावकारी वित्तीय मध्यस्थता की संचालन लागत घटाती है और वित्तीय सेवाओं तक किसानों की पहुंच बढ़ाता है, और (ii) वित्तीय संस्थानों की सहायता करने के साथ-साथ सुसंगत भूमि रिकार्ड और काश्तकारी अधिकार स्थापित कर समुचित ऋण वितरण सुकर बनाना।
- द्वितीय स्तर या शीर्षस्थ वित्तीय संस्थाओं के सुदृढ़ीकरण द्वारा प्राथमिक वित्तीय मध्यस्थों के ऋण देने का कार्य सुकर बनाना, और
- जोखिम प्रबंधन क्रियाविधि विकसित करना; जैसे फसल बीमा, ऋण गारंटी योजना (जहाँ वे आर्थिक दृष्टि से उचित हैं और लागत प्रभावी ढंग से प्रशासित हो सकती है)।

बोध प्रश्न 1

लगभग 50 शब्दों में उत्तर लिखिए।

1) कृषि को ऋण सेवाएँ देने में लगी हुई मुख्य सार्वजनिक संस्थाएँ क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

2) उच्च संचालन लागत कृषि ऋण को किस प्रकार प्रतिकूल रूप से प्रभावित करने वाला कारक है?

.....

.....

.....

.....

3) आप सुधारोत्तर वर्षों अर्थात् 1991-2010 के दौरान कृषि की ऋण आवश्यकताएं पूरी करने में RRB और SCB की तुलना में सहकारी बैंकों के निष्पादन का मूल्यांकन कैसे करते हैं?

.....

.....

.....

.....

4) कौन-सा खास कारक 1990 के दशक के दौरान कृषि को संस्थागत वित्त के निष्पादन में गिरावट के लिए उत्तरदायी है? किस सीमा तक इस संबंध में 2000 के बाद के वर्षों में सुधार आया है?

.....

.....

.....

.....

5) RIDF स्थापना के पीछे दो मुख्य उद्देश्य क्या हैं?

.....

.....

.....

.....

6) 1999 में KCC स्कीम के प्रवर्तन के पीछे मुख्य उद्देश्य क्या था?

.....

.....

.....

.....

7) SBL कार्यक्रम के सुस्पष्ट विशेषताएँ क्या हैं जिन्होंने इसे विशालतम माइक्रो वित्त पहल के रूप में विकसित होने में समर्थ बनाया?

.....

.....

.....

.....

8) SBL कार्यक्रम से MFI कैसे भिन्न है? हाल ही के वर्षों में MFI अलोकप्रिय क्यों हुआ है?

.....

.....

.....

.....

9) कौन राज्य/क्षेत्र कृषि को संस्थागत ऋण के अंश में पीछे रह गए है? वे सूचक क्या हैं जो इस असमानता को बताते हैं?

.....

.....

.....

.....

18.3 संविदा कृषि (CF)

संविदा कृषि की अवधारणा भारतीय कृषि के लिए पूरी तरह से नयी नहीं है। इसके पिछले अनुप्रयोग में औपनिवेशिक अवधि के दौरान नकदी फसलों, जैसे चाय, काफी, रबर आदि के उत्पादन के लिए प्रयोग की गई थी। बाद में, आंध्र प्रदेश में 1920 के दशक में तंबाकू की खेती में इस प्रणाली का पुनःप्रवर्तन

प्रारंभ हुआ। इसका विस्तार कई दशकों में किसानों की भिन्न-भिन्न अनुक्रिया के साथ हुआ है। स्वतंत्रतापूर्व प्रयास, यद्यपि अधिकांशतः छोटे किसान वर्गों का शोषण करने की व्यवस्था थी परंतु स्वातंत्र्योत्तर प्रयास कुछ नवाचारी वानिकी स्कीमों के इर्द-गिर्द केंद्रित रही। इसमें भारत के उत्तरी राज्यों में पहाड़ी पील (पोपला) की खेती अच्छी फार्म अनुक्रिया और सफलता के लिए विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसकी प्रचालनात्मक विशेषताओं में CF की विधि भिन्न-भिन्न थी जैसे खुली खरीद व्यवस्थाओं से साधारण करार। निवेश व्यवस्था से पर्यवेक्षित उत्पादन, जोखिम कवरेज के साथ आबद्ध ऋण अग्रिम आदि। इसलिए इसके सही परिप्रेक्ष्य में, यह प्रतिस्पर्धात्मक उत्पादन और विपणन पद्धतियों का विकास है।

18.3.1 संविदा कृषि : अवधारणा और प्रकार

संविदा कृषि की परिभाषा उन कृषि और बागवानी उत्पादों के उत्पादन और आपूर्ति की प्रणाली के रूप में की गई है जिसमें उत्पादकों/आपूर्तिकर्त्ताओं तथा क्रेयताओं के बीच वायदा ठेका अंतर्निहित होता है। संविदा किसान द्वारा कतिपय प्रकार की कृषि पण्यवस्तु क्रेयता, सामान्य तथा बड़ी कंपनी को किए गए वायदे के अनुसार सहमत समय, कीमतों और मात्रा में प्रदान करने की प्रतिबद्धता है। संविदा के अनुसार किसान के लिए अपनी भूमि पर संविदाकार की फसल पैदा करेगा और उत्पाद की कतिपय मात्रा उस क्रेता को सौंपेगा, ये मात्रा प्रत्याशित उपज और संविदा युक्त क्षेत्रफल पर आधारित होती है। विशेष किस्म की संविदा वह है जिसमें संविदाकार सामग्री, आदान तथा भूमि और श्रम आपूर्ति करने वाले किसान को खेती के लिए अपेक्षित तकनीकी सलाह भी देता है। आर्थिक उदारीकरण और वैश्वीकरण बाजार के वर्तमान संदर्भ में संविदा कृषि को विशेष रूप से प्रमुख अंतर्राष्ट्रीय दाता एजेंसियों, बहुराष्ट्रीय कंपनियों और सरकार द्वारा भारतीय कृषि की समस्याओं के समाधान के रूप में समझा जा रहा है। यह तर्क दिया जाता है कि निजी क्षेत्र सहभागिता संविदा कृषि के माध्यम से प्रोत्साहित होगी और भूमि पट्टे की व्यवस्था से फसल उत्पादन के लिए, विशेषकर तिलहन, कपास और बागवानी फसलों के लिए प्रौद्योगिकी हस्तांतरण, पूँजी प्रवाह और निश्चित बाजार के निर्माण की प्रक्रिया तेज होगी।

संविदा कृषि के प्रकार : दो प्रकार के प्रतिमानों अर्थात् प्रत्यक्ष वसूली प्रतिमान और खुला स्रोत मध्यस्थ प्रतिमान बीच संविदा कृषि पर साहित्य में अंतर किया गया है। पूर्वोक्त का संबंध उत्पादन के लिए कच्चे माल का प्रापण और उनका बाह्य विपणन के अनुसार फार्म-फर्म सहबंधन के किस्म से है। पश्चोयुक्त का स्वाभाविक परिणाम द्विपक्षीय/त्रि-पक्षीय प्रतिमान है जिसमें विनिमय की शर्तें अधिक स्पष्ट रूप से परिभाषित की जाती हैं।

प्रत्यक्ष प्रापण मॉडल

इसके अधीन फार्म फर्म सहबंधन के अनेक प्रतिमान हैं ये साधारण विपणन करार से जोखिम भागीदारी, वायदा बाजार और वायदा करार तक हैं। इन सभी व्यवस्थाओं का उद्देश्य ''आपूर्ति श्रृंखला'' गतिशील रखना है, जिसके लिए, प्रसंस्कारी और खुदरा व्यापारी छोटे व्यापारियों से या सरकारी नियमित बाजारों के बदले सीधे किसानों से अपने कच्चे माल का स्रोत चुनते हैं। ऐसे प्रापणन को उसकी कम संचालन लागत से और सरकारी नियमित बाजारों से प्रापण

से संबद्ध गुणवत्ता समस्याओं से बचने के कारण वरीयता दी जाती है। ऐसी व्यवस्थाओं की सुस्पष्ट विशेषता यही है कि साधारणतया किसानों से कोई संविदात्मक अनुबंध नहीं होता है। व्यापारियों/किसानों से गुणवत्ता मानदंड की संतुष्ट की शर्त पर उत्पाद खरीदा जाता है। बहुत से खुदरा व्यापारी कंपनियां जैसे रिलाइन्स, स्पेन्सर्स और फूड बाजार इस समय इसी मॉडल को अपना रहे हैं। परंतु किसानों से सीधा प्रापण केवल उन राज्यों में किया जा सकता है जिन्होंने प्रस्तावित मॉडल अधिनियम, 2003 के आधार पर अपना कृषि उत्पाद विपणन समिति (APMC) अधिनियम संशोधित कर लिया है (जिसमें उत्पादों से क्रेयता सीधे खरीदने की अनुमति दी गई है)। उन राज्यों में जिन्होंने अपने APMC अधिनियम संशोधित नहीं किया है, सरकारी नियमित बाजारों के माध्यम से खरीद की जाती है। परंतु बाद में ऐसे दृष्टांत भी हैं, जहाँ खुदरा व्यापारी और प्रसंस्कारक (जैसे फील्ड फ्रेश, पेप्सिको और निज्जेर) मात्रा, गुणवत्ता और पूर्व-सहमत मूल्य विर्निदिष्ट करते हुए किसानों से संविदात्मक खरीद व्यवस्था का अनुबंध करते हैं। इनमें से कुछ किसानों को विस्तार सेवाएँ, बीजों और अन्य निवेशों आपूर्ति की तथा ऋण सुविधाएँ जैसी (किसानों को दिए गए अंतिम भुगतान में समायोजित लागत के साथ) अन्य सहायताएँ भी प्रदान करते हैं। ऐसा पश्चानुगमन सहबंधन बाजार की मात्रा और गुणवत्ता आवश्यकताओं और ऐसी आवश्यकता द्वारा संचालित होता है कि गुणवत्ता मानकों को पूरा करने के लिए उत्पाद की सुगम और नियमित आपूर्ति सुनिश्चित हो। यह प्रवृत्ति ऐसी बदलती हुई प्रतिस्पर्धात्मक दशाओं का सूचक है जिसमें कच्चे माल की आपूर्ति की अनिश्चितता कंपनियों को अपने व्यापार में अस्थिरता का अनुभव करा रही है।

खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान

खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान में बाजार कीमतों, फसल, अच्छी कृषि प्रणालियों आदि के बारे में किसानों की जानकारी देने का प्रावधान है। मुख्य उद्देश्य ज्ञान और सूचना के बीच इस अंतर को समाप्त करना है जो कृषि स्तर पर विद्यमान होता है और किसी भी निश्चित करार अवधि के बिना किसानों को आदानों की आपूर्ति भी करना है। उपयुक्त विस्तार सेवाओं की प्रभाविकता के साथ किसानों के खेतों तक नहीं पहुंचने पर अनुसंधान और विकास कार्य अपनी प्रभाविकता खो देते हैं। यही इस प्रतिमान में पहल करने में कंपनियों का अंतर्निहित प्रयोजन है। खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान आने वाले समय में किसी निश्चित आपूर्ति लाइन को प्रभावकारी बनाने की संभावना भी दर्शा रहा है।

PPP प्रतिमान

PPP प्रतिमान (अर्थात् पंचायतों और निजी सेक्टर के बीच सार्वजनिक निजी साझेदारी प्रतिमान) में ग्रामीण व्यापार केंद्र या 'कृषि हब'' खुला स्रोत प्रतिमान के रूप भेद हैं। इसमें निगम कंपनियां संविदा के अधीन उत्पाद के लिए निश्चित मार्केट के साथ किसानों के लिए आदान सेवाएँ प्रदान करती हैं। कई निजी क्षेत्र के व्यापारी किसानों तक पहुंचने के लिए व्यापारिक हब की अवधारणा विकसित करने में लगे हुए हैं (जैसे *DSCL हरियाली किसान बाजार, टाटा किसान केंद्र गोदरेज आधार, ITC–ई-चौपाल, चौपाल सभा* आदि) परंतु इन कार्यों का परिमाण अभी ग्रामीण क्षेत्रों की, किसानों की आवश्यकता की तुलना में कम है। ''एग्री हब'' का लाभ है आदानों के साथ किसानों के लिए प्रदान की गई

''एक स्थान पर खरीददारी'' की संभावना। जैसे गुणवत्ता के बीच, प्रौद्योगिकी, ऋण, विस्तार और बीमा सेवाएँ आदि एक ही स्रोत द्वारा किसानों को प्रदान की जाती हैं।

द्विपक्षीय और त्रिपक्षीय प्रतिमान

द्विपक्षीय प्रतिमान केवल कंपनी और किसानों के बीच संविदा है। चित्र 18.1 उत्पादक किसान और कंपनी के बीच सीधा संबंध दिखाता है। जहाँ कंपनी आदान, जैसे बीज, उर्वरक, कीटनाशक आदि उधार पर देती है। अंतिम उत्पाद कंपनी द्वारा नियत कीमत पर खरीदे जाते हैं। इस प्रकार की व्यवस्था भारत में फील्ड फ्रेश, पेप्सिको और निज्जेर के मामले में विद्यमान है। इस प्रतिमान के रूप भेद त्रिपक्षीय प्रतिमान हैं जहाँ सुविधा प्रदाता/बिचौलिया उत्पादक और कंपनी के बीच अंतर्निहित होता है। बिचौलिया सौदाकारी सुकर बनाने में मुख्य भूमिका निभाता है। महाराष्ट्र और कनार्टक में FLI (पेप्सी) पोटेटो, इस प्रकार की व्यवस्था के उदाहरण हैं। चित्र 18.2 दर्शाता है कि संविदा में सम्मिलित तीनों पक्ष कृषि उत्पाद की ''आपूर्ति श्रृंखला'' बढ़ाने में कैसे योगदान करते हैं।

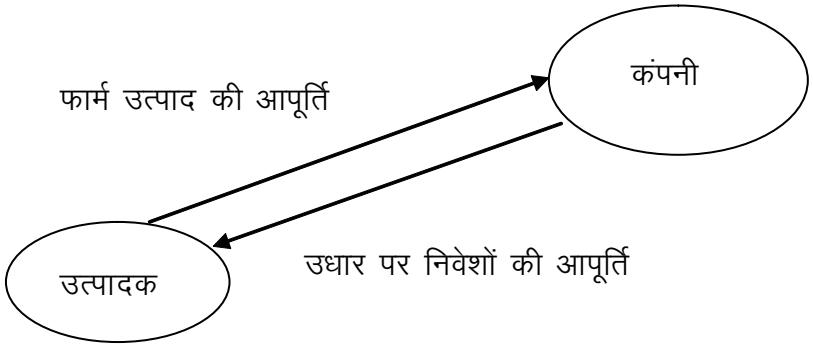

चित्र 18.1 : द्वपक्षी CF मॉडल

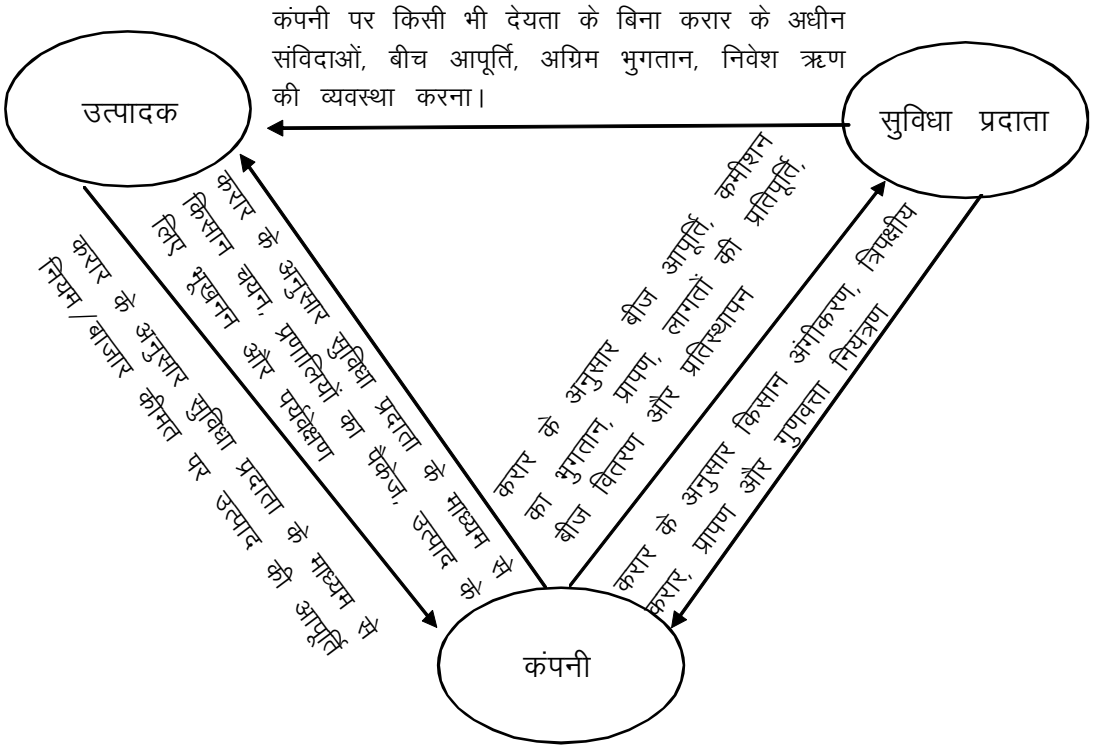

चित्र 18.2 : त्रिपक्षीय CF मॉडल

18.3.2 संविदा कृषि की सीमाएँ : इसकी सफलता के लिए आवश्यक दशाएँ

ऐसे संविदात्मक करार से जो कम सौदाकारी व्यय, निश्चित मार्केट और जोखिमों/अनिश्चितता से निपटने की बेहतर क्रियाविधि प्रदान करता है, से किसानों को लाभ होना एक सिद्धांत मान्य सत्य होगा। दूसरी ओर, संविदाकारी कंपनियों को अधिक निश्चित आपूर्तियों और गुणवत्ता पर पर्याप्त नियंत्रण का लाभ होता है। परंतु इसमें व्यावहारिक समस्याएँ भी हैं परिणामस्वरूप किसानों और कंपनियों दोनों को हानि भी हो सकती है। उदाहरण के लिए, अधिकांश संविदाकारी करार, मौद्रिक या अनौपचारिक स्वरूप के होते हैं। यहां तक कि लिखित संविदाओं के मामले में भी बहुधा भारत में उस प्रकार का कानूनी संरक्षण नहीं मिल पाता जैसा अन्य देशों में विद्यमान है। दूसरे शब्दों में, ऐसी संविदा तैयार करना और प्रवर्तन करना सुकर बनाने के लिए बाजार और क्रियाविधियाँ भारतीय संदर्भ में अभी परिपक्व होने की आवश्यकता है। संविदात्मक प्रावधानों की प्रवर्तनीयता के अभाव के कारण किसी पक्ष द्वारा उनका उल्लंघन किया जा सकता है। भारत में किसानों के ऐसे दृष्टांत हुए हैं कि वे जब बाजार कीमतें संविदा कीमतों से अधिक होती हैं संविदाकारी कंपनियों को बेचना मना कर देते हैं और बाजार दशाओं के कारण कंपनियाँ संविदाकृत मात्रा खरीदना या संविदाकृत कीमतों का भुगतान करना अस्वीकार कर देती हैं। इसके अलावा, न तो संविदाकारी कंपनी और न ही किसान इन मुद्दों को न्यायालय में ले जाने के इच्छुक होते हैं। इसलिए बहुधा यह पारस्परिक समझदारी और विश्वास है जो संविदात्मक संबंधों को संचालित करता है।

संविदा कृषि में भिन्न-भिन्न राज्य सरकारों के अनुभवों में पंजाब राज्य (जहाँ राज्य ने CF के पक्ष में तर्क दिया है क्योंकि यह फसल विविधीकरण का सबसे अच्छा उपाय है) का मामला उल्लेखनीय है। पंजाब कृषि में बहुत-सी कंपनियों की रुचि बासमती की खेती में है जो सबसे अधिक जल खपत करता है और इस प्रकार पारिस्थितिक दृष्टि से चिंताजनक है। इसलिए पारिस्थितिक बाधा के प्रश्नों और प्राकृतिक संसाधनों, जैसे जल और मृदा धारणीय रखने के लिए चुनौतियों के बीच (CF) में राज्य का अनुभव मिला-जुला रहा है। यद्यपि पंजाब में संविदा के बारे में तर्क दिया जाता है कि परंपरागत फसलों जैसे गेहूँ या धान की तुलना में सस्ती फसलों की सबसे अधिक श्रम प्रधानता के कारण रोज़गार के अधिक अवसर पैदा होते हैं। पंजाब में किसानों के ऐसे दृष्टांत हैं कि उस प्रणाली के प्रति लगातार असंतोष बढ़ रहा है जिसने उन्हें पूरी तरह से उन निगमों के नियंत्रण में डाल दिया है जो न केवल उगाई जाने वाली फसलों के बारे में निर्णय करते हैं बल्कि प्रापण मूल्य भी निर्धारित करते हैं। ऐसी घटनाएँ भी लगातार बढ़ती जा रही हैं जब फसल की घटिया गुणवत्ता के बहाने पूर्व निर्धारित मूल्य भी कम किए जाते हैं। इससे असंतोष अधिक बढ़ा है। कार्य के लिए बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धा के कारण मज़दूरी भी घटाकर इतनी कम की गई है कि यह निर्वाह स्तर पर है। इन उतार-चढ़ावों के बावजूद संविदा खेती के संबंध में पंजाब का अनुभव साधारणतया भारत में अधिक सफलतापूर्ण माना जाता है।

संविदा कृषि व्यवस्था की आलोचना की जाती है कि यह कंपनियों और बड़े ज़मींदारों के पक्ष में पूर्वग्रहग्रस्त है। इस प्रक्रिया में छोटे किसानों की सीमित या खराब सौदाकारी शक्ति का दमन होता है। ऐसी स्थितियों में, छोटे किसानों के सकुल बनाने का व्यावहारिक सुझाव दिया गया है जो बड़े पैमाने पर कार्य के प्रभाव का लाभ दे सकता है और किसानों की सौदाकारी शक्ति भी बढ़ा सकता है। विकासशील संविदा प्रतिमानों या फार्म-फर्म सहबंधनों के अन्य रूप जो छोटे जोत धारकों के प्रभावकारी है कि सफल से प्राप्ति भारतीय कृषि इस प्रकार एक मुख्य चुनौती है। छोटे उत्पादकों की दृष्टि से CF पद्धतियों की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण शर्तों में शामिल हैं : (i) प्रापण के लिए बर्धित प्रतिस्पर्धा (द्विपक्षीय या त्रिपक्षीय मॉडल के मामले में एक ही क्रेता के बदले); (ii) किसान के उत्पाद के लिए गारंटीशुदा बाजार; (iii) कंपनियों से किसानों की सौदाकारी शक्ति बढ़ाने के लिए बाजार सूचना और (iv) किसानों के समूहों के माध्यम से सौदे का अधिक बड़ा स्तर। इस संदर्भ में आप छोटे/सीमांत किसान वर्ग द्वारा कर्नाटक और महाराष्ट्र में CF के सफल प्रयोग स्मरण कर सकते हैं जिसके बारे में आप इस पाठ्यक्रम के खंड 2 के भाग 5.5 में पहले ही पढ़ चुके हैं।

बोध प्रश्न 2

लगभग 50 शब्दों में उत्तर दीजिए।

1) क्या आप सोचते हैं कि ''संविदा कृषि'' का अनुभव भारत के लिए नया है? इसके सही परिप्रेक्ष्य में आप किन शब्दों में CF प्रणाली का वास्तविक सार प्रस्तुत करेंगे?

.....

.....

.....

.....

2) विश्व बाजार नीतियों के विशेष वर्तमान संदर्भ में CF प्रणालियों से आप किन लाभों की आशा करते हैं?

.....

.....

.....

.....

3) CF के ''खुला स्रोत मध्यस्थता प्रतिमान'' के पीछे मुख्य उद्देश्य क्या है? इस दृष्टिकोण से होकर इन्हें अपने आप को संचालित करने में निगम सेक्टर की कार्रवाई में निहित प्रयोजन को क्या आप निर्धारित कर सकते हैं?

.....

.....

.....

.....

4) CF के PPP प्रतिमान में ''एग्री हब'' प्रणाली में किसानों द्वारा क्या लाभ अनुभव हुए हैं?

.....

.....

.....

.....

5) चार शर्तें बताइए जिन्हें भारत में CF प्रणाली की सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण समझा गया है।

.....

.....

.....

.....

18.4 खाद्य आपूर्ति श्रृंखला

शब्द ''खाद्य आपूर्ति श्रृंखला' का संबंध खाद्य संबंधी व्यापारिक उद्यमों से है जिनके माध्यम से खाद्य उत्पाद उसके उत्पादन स्थान से उसके उपभोग के अंतिम स्थान तक जाता है। खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में छह प्रारूपी संबद्धताओं की पहचान इस प्रकार की जा सकती है : आदान, उत्पादक, प्रसंस्कारक, वितरक, थोक व्यापारी, खुदरा व्यापारी और उपभोक्ता। स्मरण करें कि इकाई 16 (भाग 16.2) में हमने पढ़ा है कि उत्पादक और उपभोक्ता के बीच ''चैनल'' की लंबाई कम-से-कम होनी चाहिए ताकि उत्पादक का प्रतिलाभ अधिकतम हो और इस प्रकार, दक्ष खाद्य श्रृंखला की अपेक्षिताएँ उत्पादक के अधिकतम हित से स्वतः समाकलित हो सके। साथ ही उपभोक्ता भी अच्छी अर्थात् कम कीमत का लाभ प्राप्त कर सके। यदि खाद्य आपूर्ति श्रृंखला इष्टतम है, जैसे : किसान → खुदरा व्यापारी →उपभोक्ता। श्रृंखला लंबाई की यह अनुकूलता भारत में विद्यमान खाद्य आपूर्ति से बिल्कुल भिन्न है, जैसे : किसान, तालुका स्तर पर ग्राम एजेंट, मंडी स्तर पर मार्केट एजेंट, थोक व्यापारी, अर्द्ध थोक व्यापारी, खुदरा व्यापारी और उपभोक्ता। वास्तव में, अपने-अपने अंश हथियाने वाले बहुत से बिचौलिए होने के कारक इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि भारतीय किसान उस कीमत का लगभग 28 प्रतिशत ही पाते हैं जो उपभोक्ता उनके उत्पादों के लिए देता है। यह भी स्पष्ट होता है कि बहुत से उत्पादों, जैसे, फलों और सब्जियों के बारे में शीर्षस्थ क्रम का प्रमुख विश्व उत्पाद होने के बावजूद संसाधित बागवानी उत्पादों के लिए निर्यात मार्केट में भारत का अंश (ब्राजील/ संयुक्त राज्य में 70 प्रतिशत, फिलिपाइन्स

में 78 प्रतिशत, मलेशिया में 83 प्रतिशत आदि की तुलना में) एक प्रतिशत से भी कम है (देखिए इकाई 2 का भाग 2.5)। इस घटिया प्रस्थिति का कारण फसल कटाईबाद की भारतीय प्रबंधन पद्धति है। इसीलिए हमें इन क्षेत्रों पर अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है, जैसे श्रेणीकरण (ग्रेडिंग), डिब्बा बंद (पैकेजिंग), पूर्व शीतलन (प्री कूलिंग), भंडारण और परिवहन सुविधाएँ। इसमें 'शीत श्रृंखलाओं'' की महत्त्वपूर्ण भूमिका है।

खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में खुदरा आपूर्ति श्रृंखला और मूल्य आपूर्ति श्रृंखला के बीच अंतर किया जा सकता है। यदि पण्यवस्तु उपभोक्ता के पास प्रसंस्करण के बिना वैसे ही रूप में पहुंचती है जैसी किसानों द्वारा पैदा की गई थी तो इसे खुदरा आपूर्ति श्रृंखला कहा जा सकता है। एक उदाहरण टमाटर का है जो अंतिम खरीददार द्वारा सब्जी के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। यदि किसान द्वारा उत्पादित पण्यवस्तु प्रसंस्करण के बाद उपभोक्ता के पास पहुंचती हैं, तो इसे मूल्य श्रृंखला के भाग के रूप में देखा जा सकता है क्योंकि प्रसंस्करण से मूल्य वृद्धि होती है। उपभोक्ता द्वारा खरीदा गया टमाटर कैचप उदाहरण है जिसमें किसान द्वारा उत्पादित टमाटर में मूल्य वृद्धि होती है। इन दो प्रकारों पर चर्चा नीचे की गई है।

18.4.1 शीत श्रृंखला

शीत श्रृंखला को खुदरा आपूर्ति श्रृंखला के भाग के रूप में देखा जा सकता है। शीत श्रृंखला वे संभार तंत्र प्रणालियां हैं जो विनाशशील वस्तुओं की सही भंडारण दशाएँ बनाए रखने के लिए अपेक्षित सुविधाओं की श्रृंखला प्रदान करती हैं। इस प्रकार की सुविधाएँ संपूर्ण खाद्य आपूर्ति श्रृंखला में उत्पादन स्थान से उपभोग स्थान तक स्थापित करना आवश्यक है।

श्रृंखला फार्म स्तर पर प्रारंभ कर और उपभोक्ता स्तर तक पहुँचाना आवश्यक है। सुव्यवस्थित शीत श्रृंखला बर्बादी रोकती है, उत्पाद की गुणवत्ता बनाए रखता है और उपभोक्ताओं को लागत प्रभावी वितरण की गारंटी देता है। शीत श्रृंखला की मुख्य विशेषताएँ यह हैं कि यदि कोई भी एक कड़ी लुप्त होती है या कमजोर होती है तो पूरी प्रणाली विफल हो जाती है। शीत श्रृंखला की आधारभूत संरचना के संभारतंत्र इस प्रकार निर्धारित हो सकते हैं, जैसे पूर्व शीतलन सुविधाएँ→शीत भंडारण→प्रशीतनकृत (रेफ्रिजरेटेड) वाहक→पैकेजिंग→ गोदाम→ सूचना प्रबंधन प्रणाली (अर्थात् पता लगाना और खोजना)।

यह अनुमान लगाया गया है कि भारत की प्रतिवर्ष उगाए गए लगभग 30 प्रतिशत फल और सब्जियां शीत श्रृंखला की कड़ियों में अंतर के कारण नष्ट हो जाते हैं। इसके फलस्वरूप कीमतों में अस्थिरता उत्पन्न होती है, किसान प्रत्याशित प्रतिलाभ प्राप्त नहीं कर पाता। इससे ग्रामीण गरीबी बढ़ती है और किसानों में निराशा की संभावना होती है। बाजार की अन्य कमियों और मूल्य नियंत्रण के साथ मिलकर यह अनुमान लगाया गया है कि फल और सब्जियों के उपभोग की अपेक्षा विनाश अधिक होता है। आपने हाल ही के समाचारपत्रों (मई, 2012) में पढ़ा होगा कि बम्पर फसल परंतु भंडारण सुविधाओं से घटिया तालमेल के कारण भारत राजकोष के लिए भारी सब्सिडी के बोझ पर खाद्यान्न निर्यात करने के लिए बाध्य हुआ है। इसका अभिप्राय यह है कि फसल कटाई पूर्व प्रणालियों

पर यद्यपि उसकी आवश्यकतानुसार उचित मात्रा में ध्यान दिया जाता है परंतु फसल कटाईबाद की समस्याओं की अनदेखी की जाती है। भारतीय शीत भंडारों की प्रचालन लागत का अनुमान $60 प्रतिघन मीटर प्रतिवर्ष लगाया गया है, जबकि विकसित देशों में $30 से कम है। इसके अलावा, भारतीय शीत भंडारणों के कुल व्यय का लगभग 28 प्रतिशत ऊर्जा व्यय आता है, जबकि विकसित देशों में यह मात्र 10 प्रतिशत है। यद्यपि इन कारकों ने भारत में शीत भंडार निर्माण आर्थिक दृष्टि से अव्यावहारिक बनाया है, यह अनुमान लगाया गया है कि ''रेफ्रिजरेटेड कंटेनरों में ताजी सब्जियाँ और फलों के परिवहन से 30 से 35 प्रतिशत क्षति कम की जा सकती है (कम कार्यकुशल ट्रकों की तुलना में)। भारत में अपेक्षित रेफ्रिजरेटेड कंटेनरों की कुल संख्या का अनुमान लगभग 20,000 लगाया गया है। यह भी अनुमान लगाया गया है कि फलों और सब्जियों की बर्बादी में प्रति 1 प्रतिशत कमी से 0.13 बिलियन US डालर की बचत हो सकती है। इसके अलावा, इस हानि की अवस्था के अनुसार विभाजन का अनुमान इस प्रकार लगाया गया हैः घटिया संचालन–30 प्रतिशत, घटिया भंडारण–30 प्रतिशत, घटिया परिवहन–30 प्रतिशत, बिचौलिये–5 प्रतिशत, बेहतर संरक्षण तकनीकों की जानकारी का अभाव–5 प्रतिशत। इस फसल कटाई पश्च क्षति को कम करने के लिए अपेक्षित आधारभूत संरचना स्थापित करने में किए गए निवेश की सही नीतिगत सहायता में लगे हुए हमारे श्रम बल के लगभग 50 प्रतिशत का क्षेत्र स्तर सुधारा जा सकता है। यह समस्या का महत्त्वपूर्ण सामाजिक पहलू है जिसकी ओर भारतीय कृषि में इस मौजूदा संकट के समय सरकार को ध्यान देना चाहिए।

18.4.2 मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला

भारत कृषि प्रसंस्करण से अपनी संभावनाएँ प्राप्त करने में पिछड़ रही है। यह चीन में 23 प्रतिशत की तुलना में भारतीय खाद्य उत्पादों में 7 प्रतिशत मूल्य परिवर्धन से स्पष्ट है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, खाद्य/शीत श्रृंखला की कमियों को दूर करने के लिए (आगे अधिक निजी निवेश आकर्षित करने के लिए) अपेक्षित सार्वजनिक निवेश कर शुरुआत करनी चाहिए। इसके अलावा, उन राज्यों में APMC में अपेक्षित संशोधन द्वारा खुदरा व्यापारियों के लिए उत्पादों की सीधी उपलब्धता आसान होनी चाहिए जिनमें अभी तक यह नहीं किया गया है। यद्यपि देश में 27,000 से अधिक खाद्य प्रसंस्करण इकाइयां हैं, इनमें से 95 प्रतिशत कम निवेश के साथ गृह उद्योग सेक्टर में हैं। ये इकाइयां प्रौद्योगिकीय विकास का दोहन करने में अपनी अक्षमता के कारण न्यूनतम क्षमता से कार्य करती हैं। यह अंतर्राष्ट्रीय अपेक्षित पादप स्वच्छता मानकों को पूरा करने में रुकावट खड़ी कर रहा है। इसके अलावा, सरकार द्वारा लगाए गए कर पैकेजिंग की लागत छोटे उद्यमियों द्वारा किए गए व्यय का बड़ा भाग है। कानून अनाकर्षक और बड़े क्रेयताओं के प्रवेश के लिए बाधक है जो छोटी प्रसंस्कण इकाइयों का विकास कर सकते हैं तथा छोटी प्रसंस्करण इकाइयों के लिए नियमित व्यापार सुनिश्चित कर सकते हैं। संक्षेप में, भारत में खुदरा व्यापार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अनुमति देने पर वर्तमान बहस के होते हुए भी सेक्टर की वर्तमान मांगों के आधार पर कृषि विकास के संवर्धन के लिए स्वीकार्य मॉडल की तत्काल आवश्यकता है। यह महत्त्वपूर्ण है कि छोटे और सीमांत किसानों को वर्तमान खुदरा व्यापार की तेजी का लाभ मिलना चाहिए। FMCG (तीव्र

संचलन, उपभोक्ता पदार्थ) कंपनियां, जो छोटे और सीमांत किसानों से उनके उत्पाद लेने के इच्छुक है और अपनी ब्रॉंड इक्विटी शक्ति का उपयोग करना चाहते हैं, उन्हें समुचित नियामक ढाँचे के अंतर्गत बाजार विकास में भाग लेने की सुविधा होनी चाहिए। यह बाजारोन्मुखी वर्तमान नीति के आधार पर भारतीय कृषि के विकास के लिए आवश्यक है और विचाराधीन वृद्धि सहसंबद्ध समावेशी विकास प्रतिमान में वितरणात्मक समता सुनिश्चित करने के लिए भी आवश्यक है।

बोध प्रश्न 2

प्रश्न 2 से 6 तक का उत्तर लगभग 50 शब्दों में दीजिए।

1) रिक्त स्थान भरिए –

   क) यह अनुमान लगाया गया है कि भारतीय किसान उपभोक्ता द्वारा भुगतान की गई अंतिम कीमत का ..... प्रतिशत पाता है। यह अंश संयुक्त राज्य/ब्राजील में ..... प्रतिशत, फिलीपाइन्स में ..... प्रतिशत, और मलेशिया में ..... प्रतिशत की तुलना में बहुत कम है।

   ख) अनुमानों के अनुसार प्रतिवर्ष भारत में उगाई गई सब्जियों और फलों का ..... प्रतिशत नष्ट हो जाता है।

   ग) भारतीय शीत भंडारों की प्रचालन लागत प्रति घन मीटर प्रति वर्ष विकसित देशों में ..... की तुलना में ..... है।

2) ''खाद्य सुरक्षा श्रृंखला'' शब्द की उसकी छह सहसंबद्धताओं का उल्लेख करते हुए परिभाषा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

3) सुव्यवस्थित शीत श्रृंखला प्रणाली के उसकी आधारभूत संरचना का संभार तंत्र निर्धारित करते हुए लाभ बताइए।

.....

.....

.....

.....

4) भारत में बम्पर खाद्य फसल से उत्पन्न वर्तमान (2012) समस्या का उल्लेख कीजिए और इस विरोधाभासी स्थिति के निहित कारणों की पहचान कीजिए।

.....

.....

.....

5) आप भारतीय कृषि की वर्तमान अवस्था के महत्त्वपूर्ण ''सामाजिक पहलू'' के रूप में किसकी पहचान करेंगे ?

.....

.....

.....

.....

6) उन महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों का उल्लेख कीजिए जिन पर सुसाध्यकारी सार्वजनिक नीति की भारतीय कृषि में मूल्य/आपूर्ति श्रृंखला के कार्यकरण की दक्षता सुधारने के लिए तत्काल आवश्यकता है।

.....

.....

.....

.....

18.5 सारांश

भारतीय कृषि के संबंध में सीमित दृष्टि में परिभाषित शब्द ''संस्थागत वित्त'' में सार्वजनिक निकाय में शामिल है : सहकारी ऋण सहकारी समितियाँ, अनुसूचित वाणिज्यिक बैंक और RRB, विशेषकर भारतीय कृषि की ऋण आवश्यकताएँ पूरा करने के लिए स्थापित। इन तीनों प्रमुख एजेंसियों का 1986-2010 की पर्याप्त दीर्घ समयावधि के दौरान निष्पादन पर विचार करें तो कुल औसत वार्षिक वृद्धि दिए गए ऋण की मात्रा लगभग 18 प्रतिशत थी, भारतीय कृषि को संस्थागत वित्त का निष्पादन घटिया नहीं समझा जा सकता है। इसके अलावा इन सार्वजनिक एजेंसियों के अतिरिक्त कई अन्य पहले भी हुईं जो भारतीय किसानों को संस्थागत कृषि, वित्त का प्रस्थिति सुधारने में अप्रत्यक्ष रूप से योगदान कर सकते हैं। इनमें RIDF, KCC, SBL कार्यक्रम आदि शामिल हैं। यद्यपि इन उपायों ने किसी सीमा तक सुविधाएँ दी परंतु अभी भी वास्तविक आवश्यकता की कमी है। इसने खुला बाजार नीतियों के अनुसरण द्वारा उत्पन्न प्रतिस्पर्धात्मक वातावरण से मिलकर ह्रासमान बाजार दशाओं के लिए अत्यधिक महत्त्वपूर्ण छोटे और सीमांत किसानों के विशाल वर्ग की स्थिति बहुत अस्थिर बना दी। इस पहलू में स्थिति आसान बनाने के लिए संविदा खेती की अवधारणा जिसने अपने भिन्न-भिन्न रूपों में सदियों से प्रथा प्राप्ति से भी चल रही थी। अभी हाल ही में, भारत के बहुत से राज्यों में नए रूप में आजमाई गई हैं। यद्यपि इसका अनुभव मिला-जुला रहा है, कुछ राज्यों में उसके अनुप्रयोग में सफलता का स्तर काफी प्रशंसनीय रहा है। अधिक महत्त्वपूर्ण तो यह है कि उसके दक्ष कार्यकरण के लिए अपेक्षित आदर्श रूप से अपेक्षित दशाएँ स्थापित करने पर फोकस करना अत्यावश्यक है। इनमें शामिल है : (i) बाजार में काम करने के लिए अधिक व्यापारियों को अनुमति देकर वर्धित प्रतिस्पर्धा उत्पन्न करना, (ii) कंपनियों से

किसानों की सौदेबाजी शक्ति बढ़ाने के लिए बाजार सूचना प्रणाली सुधारना, (iii) समूह या सामूहिक कार्रवाई आदि द्वारा छोटे/सीमांत किसानों के सौदे की क्षमता का विस्तार करना। अंतिम रूप से आवश्यक आधारभूत संरचना, (जैसे ''हरित भंडार') से विनाशशील पण्यवस्तुओं (जैसे फल और सब्जियां) की बर्बादी कम होगी जो कुल उत्पादन का 30 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया गया है। यह खाद्य/आपूर्ति श्रृंखलाओं पर अपर्याप्तता से जुड़कर हमारे उल्लेखनीय रूप से मात्रा के आधार पर उन्नत उत्पादन का पूरा मूल्य प्राप्त करने में बहुत रुकावट डाल रहा है। इसलिए कृषि उत्पादन की फसल कटाई पश्च दक्ष पद्धतियों पर फोकस करना अत्यन्त आवश्यक है। भारत से कृषि उत्पादों के लिए निर्यात बाजार में वर्तमान नगण्य रूप से कम शेयर बढ़ाने में लंबा रास्ता तय करना होगा।

18.6 शब्दावली

संस्थागत वित्त : अपने विस्तृत कार्य क्षेत्र में किसानों की ऋण संबंधी समस्याओं पर कार्यदल, भारत सरकार, 2010, ने ''संस्थागत वित्त'' की उसकी परिभाषा में निजी सेक्टर के वित्तीय संस्थाओं को भी शामिल किया है। ऐसी संस्थाओं में शामिल है : (i) प्रयोक्ता स्वामित्व की संस्थाएँ जैसे SHG, (ii) अधिक उदार सहकारी कानूनों के अधीन पंजीकृत नई पीढ़ी की बचत और सहकारी समितियां, लाभ के लिए नहीं NBFC और गैर बैंक वित्त कंपनियाँ तथा अन्य लाभ के लिए नहीं NGOs.

संविदा कृषि/खेती : कृषि या बागवानी उत्पादों के उत्पादन और आपूर्ति की प्रणाली है। यह उत्पादकों/अभिकर्त्ताओं और क्रेयताओं के बीच वायदा संविदा है जिसके अधीन किसान द्वारा कुछ किस्म की कृषि पण्यवस्तु ज्ञात और वचनबद्ध क्रेयता द्वारा अपेक्षित मात्रा में समय और कीमत पर देने के लिए वचनबद्धता है।

शीत श्रृंखला : विनाशशील वस्तुओं के लिए सही भंडारण दशाएँ बनाए रखने के लिए आदर्श रूप से अपेक्षित सुविधाओं की श्रृंखला देने की संभार तंत्र प्रणाली है।

रेफ्रिजरेटेड कंटेनर : मानक बीस फुट समतुल्य इकाई (TEU) आकार के परिवहन वाहन है जिनमें उनकी छत पर सौर PV पैनलों के 0.24 मिलियन वर्ग मीटर लगे होते हैं जो उनके संचालन के लिए स्वतंत्र विद्युत ग्रिड सुनिश्चित करता है। भारतीय भूभाग दशाओं के लिए ये परंपरागत रेफ्रिजरेटेड ट्रकों की अपेक्षा अधिक कुशल माने जाते हैं।

18.7 कुछ उपयोगी पुस्तकें

ICAR/IFPRI/USDA (2008), Contract Farming in India : A Resource Book, A Product of Indo-US Knowledge Initiative on Agriculture, An Online Resource Book [http:/www.ncap.res.in/contract_% 20farming/index.htm].

Government of India (2010), Report on the Task Force on Credit Related Issues of Farmers, MoAg., June.

Surjit Singh (2012), Recent Experience in Agriculture Finance in India: Concerns for Small Farmers, Institute of Development Studies, Jaipur.

18.8 बोध प्रश्नों के उत्तर/संकेत

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 18.2 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 18.2 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 18.2.2 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 18.2.2 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।

7) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।

8) देखिए उपभाग 18.2.3 और उत्तर दीजिए।

9) देखिए उपभाग 18.2.4 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 2

1) देखिए भाग 18.3 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 18.3.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 18.3.2 और उत्तर दीजिए।

बोध प्रश्न 3

1) देखिए भाग 18.4 और 18.4.1 और उत्तर दीजिए।

2) देखिए भाग 18.4 और उत्तर दीजिए।

3) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।

4) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।

5) देखिए उपभाग 18.4.1 और उत्तर दीजिए।

6) देखिए उपभाग 18.4.2 और उत्तर दीजिए।